‘आप’ के विधायकों के नाम खुला ख़त

सन्त समीर

एचटी हाउस, नई दिल्ली

25 दिसम्बर, 2013

‘आप’ के सभी परिचित-अपरिचित नवनिर्वाचित विधायक मित्रो! आप सबके नाम जब यह खुला ख़त लिखने बैठा हूँ तो आप सरकार बनाने की जद्दोजहद में लगे हैं; और जब तक यह आपके हाथों में पहुँचेगा तब तक शायद ‘आप’की सरकार बन चुकी होगी और आप सब मुस्तैदी से दिल्ली की समस्याओं से दो-दो हाथ करते हुए उनके कुछ कारगर समाधान निकालने की जुगत कर रहे होंगे। कुल मतलब यह कि अभी तक जो जनता ‘आप’की भाग्यविधाता थी, उस जनता के भले-बुरे के, कम-से-कम व्यवस्था के स्तर पर, अब आप भाग्यविधाता होंगे; जब तक कि ‘आप’की सरकार चलती रहेगी।

सोचता हूँ कि आजकल आप सबों की सुबह कैसी होती होगी। अलस्सुबह, जब पहली दफ़ा आपकी नींद टूटती होगी तो क्या आप ख़ुद को कुछ नई ज़िम्मेदारियों से भरा हुआ एक नए समाज निर्माण के मिशन पर किसी बड़े प्रस्थान के लिए तैयार होता हुआ महसूस करते होंगे अथवा ख़ुद को वीआईपी या सेलीब्रिटी-सरीखी शख़्सियत में तब्दील होते हुए पाते होंगे। इस वाक्य के उत्तरार्ध में मैं कोई तञ्ज़ नहीं कर रहा, बल्कि कुछ घटनाओं की वजह से थोड़ा आशङ्कित हो उठा हूँ; और चूँकि, कम-से-कम सचेत करने भर को अपना बूता महसूस कर पा रहा हूँ, इसलिए एक आम आदमी की तरह ऐसी हिमाकत करते रहना चाहता हूँ। पहली घटना, जिसकी वजह से आप सबको ख़त लिखने का ख़याल आया, वह थी धर्मेन्द्र कोली द्वारा ‘विजय जुलूस’ निकालना। इस घटना में मुझे भविष्य की कुछ आशङ्काओं के सङ्केत दिखाई देने लगे थे; सो, उस वक़्त मैंने फेसबुक पर एक छोटी-सी टिप्पणी कुछ यों की थी—“...असल में ‘आप’ के विधायकों को ‘विजय जुलूस’ नहीं, बल्कि ‘विनम्रता जुलूस’ निकालना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे घर-घर जाएँ और जनता को धन्यवाद देते हुए बड़े-बुज़ुर्गों, माँ-बहनों के पाँव छूकर उनसे कहें कि--हमें आशीर्वाद दीजिए कि आपने जिन उम्मीदों के साथ हमें वोट दिया है, हम पूरी ईमानदारी के साथ उन उम्मीदों के लिए काम कर सकें। नए समाज का निर्माण कुछ ऐसी ही राहों पर चलकर हो सकता है। राजनीति की नई इबारत लिखने के मिशन पर निकले लोगो! याद रखो कि विजय जुलूस का बहुत हद तक मतलब है—जीत का दम्भ; जबकि ‘आप’से लोग यह उम्मीद लगाने लगे हैं कि आप लोग घिनौनी राजनीति के बरअक्स एक नई राजनीतिक संस्कृति का भूगोल रचेंगे। शक्ति और सुविधा हासिल करने के बाद हेंकड़ी दिखाने के बजाय विनम्रता दिखाने का अभ्यास शुरू कीजिए, अन्यथा कुछ वक़्त बाद कहीं लोग यह न कहना शुरू कर दें कि जेपी आन्दोलन की तरह इस आन्दोलन ने भी अन्ततः लालुओं और मुलायमों की ही जमात पैदा की।”

इसके अलावा जिस दूसरी घटना ने आपके नाम ख़त लिखने का एकदम मन बना दिया, वह थी मन्त्री पद को लेकर विनोद कुमार बिन्नी की नाराज़गी। यह संयोग ही है कि बिन्नी जिस इलाक़े से प्रत्याशी थे, उसी इलाक़े के एक मुहल्ले मण्डावली की मतदाता सूची में मेरा भी नाम है। 17-18 साल बाद यह मेरे जीवन का दूसरा मौक़ा था जब मैंने पोलिङ्ग बूथ पर जाकर मतदान किया। दरअसल, राजनीतिज्ञों के धतकरम देख-देख राजनीति से मुझे घृणा-सी हो चुकी थी और वोट देना पापियों को बढ़ावा देने जैसा लगने लगा था, इसलिए मतदान करने की जहमत उठाना कभी ज़रूरी भी नहीं समझता था। लेकिन, राजनीति की बदलती बयार का रुख़ देखकर लगा कि कम-से-कम इस बार वोट देना किसी पुण्य के काम से कम नहीं। ख़ैर... बात बिन्नी प्रकरण की करूँ तो इस मसले पर मात्र अरविन्द केजरीवाल जी की प्रतिक्रिया मुझे स्वाभाविक लगी, जबकि अन्य साथियों ने जिस अन्दाज़ में डैमेज कण्ट्रोल की कोशिश की वह थोड़ा अटपटा लगा। यदि बिन्नी सचमुच नाराज़ नहीं थे तो चिन्ता की कोई बात नहीं, पर अगर उनकी कोई नाराज़गी थी, तो खीर खाने के बहाने सारा दोष मीडिया पर मढ़ देने के तरीक़े में मेरे जैसे व्यक्ति को 'नेतागीरी' की बू आती है। आमजन को इस बात की ज़रूर ख़ुशी हुई कि मामला ज़्यादा आगे नहीं बढ़ा और बिन्नी जी ने समझदारी दिखाई; पर क्या ही अच्छा होता कि हम लीपापोती के बजाय सौ फ़ीसद सच का सहारा लेते और जनता को पूर्व की तमाम घटनाओं की ही भाँति साफ़-साफ़ बता देते। मैं सोचता हूँ कि बयान कुछ यों भी हो सकता था—"हाँ, यह सच है कि हमारे बीच कुछ ग़लतफ़हमी हुई, लेकिन हम मीडिया के लोगों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने सही समय पर ख़बर चलाई और हमें बिन्नी जी की नाराज़गी का पता चला। हमने उनसे पूरे मामले पर बात की और अब हमारी आपस की ग़लतफ़हमियाँ दूर हो गई हैं। हम मानते हैं कि हम किसी अन्य लोक से उतरे हुए लोग नहीं हैं और हमसे भी ग़लतियाँ हो ही सकती हैं। बस, हमारी कोशिश यही है कि हम अपनी ग़लतियों को समझते हुए उन्हें दूर कर पाएँ और देश की जनता के लिए कुछ अच्छे काम कर सकें। एक बार फिर हम हमारी कमियाँ बताने वालों को धन्यवाद देते हैं, क्योंकि ऐसी ही चीज़ों से हमें आत्मसुधार का मौक़ा मिलता है।"

बयान इससे भी बेहतर हो सकता है, पर मुझे लगता है कि इस तरह के सच्चे बयानों से जनता का भरोसा हम ज़्यादा जीत सकते हैं। अन्यथा, आपद्धर्म और तात्कालिकता के तर्कों पर लीपापोती के तरीक़े हमें भी धीरे-धीरे 'नेता' बना देंगे और तब शायद जेपी आन्दोलन जैसा हस्र हम अपना भी देखने को अभिशप्त होंगे। वास्तव में बच्चे बड़े होकर वही बनते हैं जैसा उन्हें घर-परिवार, समाज और विद्यालयों के मार्फ़त बचपन से संस्कारित किया जाता है। क्या आपको नहीं लगता कि आन्दोलन की कोख से उपजी राजनीति की इस 'नई उमर' को भी अभी और संस्कारित किए जाने की ज़रूरत है।

मुझे लगता है, अभी नया जोश है तो नए संस्कार भी हम आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। इससे भी बड़ी बात है कि जिनके नेतृत्व में आपने परिवर्तन के सपने सँजोए हैं, उन अरविन्द केजरीवाल में महान् सम्भावनाएँ दिख रही हैं। उनमें आत्मसुधार की इच्छा निरन्तर दिखाई देती रही है। सच्चाई (यह बात अलग है कि कभी-कभी उनके 'सच' पर कुछ सन्देह भी व्यक्त किया जाता है) का दामन वे अभी भी मज़बूती से पकड़े हुए हैं। लालबत्ती और वीआईपी सहूलियतों से परहेज़ जैसी अन्यान्य घोषणाएँ वास्तव में चरित्र निर्माण के ही उपादान हैं। कुछ लोग उन्हें ज़िद्दी, अड़ियल, घमण्डी, तानाशाह वग़ैरह भी कहते सुने जाते हैं। मैं नहीं जानता कि ये आरोप एकदम से बेदम हैं या इनमें कुछ जान है। दो-चार पल की कुछेक मुलाक़ातों को छोड़ दें तो मेरी अरविन्द जी के साथ सिर्फ़ एक बार ही लम्बी

बातचीत हुई है। आध-पौन घण्टे की उस मुलाक़ात में मेरे लिए आश्वस्तिदायक बात थी कि वे लगभग पूरे समय सिर्फ़ मेरी ही बात सुनते रहे और अन्त में सहमति जताते हुए साथ जुड़कर काम करने का प्रस्ताव रखा, बस। कुछेक कार्यकर्ताओं को किसी बात के लिए उन्हें झिड़कते हुए देखा तो एकबारगी ज़रूर लगा कि शायद उनके स्वभाव में कुछ अड़ियलपन हो; पर, मैं सोचता हूँ कि सच्चाई और ईमानदारी के लिए ज़िद्दी और अड़ियल होने में बुराई क्या है! अन्ना अगर अपनी बात पर अड़ जाने की ज़िद न ठानते तो क्या आपको लगता है कि भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन की यात्रा यहाँ तक पहुँच पाती? ज़िद्दी और अड़ियलपन की बुराई से दूर रहने का क्या यह मतलब है कि हम बस चलताऊ समाधान निकालने या जैसे-तैसे सरकार चलाने के लिए बात-बात पर घटिया-से समझौते करते फिरें? जहाँ तक अरविन्द केजरीवाल की तानाशाही प्रवृत्ति की बात है तो मैं ऐसी तानाशाही को भी बहुत बुरा नहीं समझता। इस देश को ढुलमुल लोग बहुत मिल चुके, अब ढङ्ग का तानाशाह भी आए तो क्या दिक़्क़त? एक ऐसा तानाशाह, जो जनता की इच्छा सुने और उसे पूरा करने के लिए पूरी ठसक से नियम-क़ानून लागू करवाए। हाँ, यह ज़रूर मैं सोचता हूँ कि हमें रूखे तानाशाह की नहीं, बल्कि विनम्र तानाशाह की ज़रूरत है और इस मामले में गान्धी से अच्छा उदाहरण और कोई मुझे दिखाई नहीं देता। गाँधी हमारे लिए रास्ता सुझाते हैं।

उम्मीद यही करता हूँ कि आप पहचान पा रहे होंगे कि ईश्वर ने युग परिवर्तन का एक महान् अवसर आपके सामने उपस्थित किया है। कुछ समय पहले कुछ ऐसा ही अवसर योगगुरु स्वामी रामदेव के सामने भी उपस्थित हुआ था। दुर्भाग्य से स्वामी रामदेव ने वह अवसर अपनी ही बेवकूफ़ियों के चलते गँवा दिया और अपनी ताक़त शायद 75 फ़ीसद से भी ज़्यादा कम कर ली। असल में साधना कम हो और शोहरत ज़्यादा मिल जाय तो आत्मभ्रम का शिकार होने की सम्भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं और आदमी के लिए ख़ुद को सँभाल पाना मुश्किल हो जाता है। मुझे लगता है कि बाबा रामदेव के साथ यही हुआ। हठयोग की साधना तो उन्होंने बढ़िया तरीक़े से कर ली, पर मन और आत्मा को क़ाबू में रख पाने के असली योग पर वे ज़्यादा ध्यान नहीं दे पाए। अन्यथा, दूसरों को मानसिक नियन्त्रण और कुण्डलिनी शक्ति का पाठ पढ़ाने वाले एक क्रान्तिकारी सन्न्यासी के सामने औरतों के कपड़े पहनकर भागने की नौबत न आती। बहरहाल, अच्छी बात यही है कि तमाम घटनाओं के बाद भी स्वामी रामदेव जी ने अभी तक हार नहीं मानी है और आत्मबल जुटाने की उनकी कोशिशें जारी हैं। वे मेरे पुराने परिचित हैं, इसलिए ईश्वर से यही प्रार्थना करूँगा कि वे ज़ोरदार ढङ्ग से आत्मबल हासिल करें और निर्विकार भाव से बग़ैर किसी दल विशेष का मुखौटा बने, अपने सन्न्यास धर्म का पालन करते हुए राष्ट्रनिर्माण का नायकत्व प्रदर्शित करें।

ऐसी स्थितियों में मुझे सबसे बड़ी समस्या दरअसल अहङ्कार की लगती है। अकसर अहङ्कार ही आत्मभ्रम की खाई में हमें धकेलता है। इस ख़तरे के प्रति आप सबको अभी से सावधान रहने की ज़रूरत है। मैं मानता हूँ कि अहङ्कार और आत्मभ्रम दोनों को आसानी से रोका जा सकता है, बशर्ते हम यह देखने का अभ्यास कर लें कि कैसे ये दबे पाँव हमारे भीतर प्रवेश करते हैं। अकसर ऐसा होता है कि जब हम साधारण स्थितियों में होते हैं तो पैदल या साइकिल से चलने में हमें कोई शर्म नहीं महसूस होती, पर जैसे-जैसे हमारे पास साधन बढ़ते हैं और हम स्कूटर व कार से होते हुए हवाई जहाज़ तक की सुविधाएँ हासिल करने की सम्पन्नता तक पहुँच जाते हैं, तो एक स्थिति के बाद हममें से ज़्यादातर लोग साइकिल जैसी चीज़ के पास खड़े होने तक में शर्म महसूस करने लगते हैं। अहङ्कार और ख़ुद को आम लोगों से अलग दिखाने की चाहत यहीं से बीमारी बनना शुरू होती है और हम उस मक़सद को जान पाने के

क़ाबिल ही नहीं रह पाते, जिस मक़सद के लिए हमें इस धरती पर भेजा गया था। महत्त्वपूर्ण यही है कि हम समझ पाएँ कि इस संसार में हमारी हैसियत क्या है। जिस ब्रह्माण्ड के हम पुरज़े हैं उसी की थोड़ी समझ बना पाएँ तो शायद हमें हमारी हैसियत समझ में आ जाय। रात को खुला आसमान निहारते हुए हो सकता है कभी आपके भीतर भी यह ख़याल आया हो कि आँखों के सामने टिमटिमाते अनगिन तारों का आर-पार क्या है? या कि इस ब्रह्माण्ड का विस्तार कहाँ तक है? महज़ धरती, जिसके हम बाशिन्दे हैं, उसी का आकार इतना बड़ा है कि हमारी निगाहें उसे नाप सकने में असमर्थ हैं। विज्ञान कहता है कि आँखों के सामने दिखने वाले अरबों-खरबों तारों में से जाने कितने हमारी पृथ्वी से लाखों-करोड़ों गुना तक बड़े हैं। हमारी धरती जिस आकाशगङ्गा का हिस्सा है उसमें ही अरबों-खरबों तारे हैं। और, आकाशगङ्गाओं की तो पूछिए मत, वे भी अरबों-खरबों में हैं। सच कहा जाए तो इस सङ्ख्या को अरबों-खरबों में बाँधना भी ब्रह्माण्ड के विस्तार को बहुत सीमित कर देना है। शायद इसी वजह से हमारे ऋषि-मुनियों ने इस पूरे विस्तार को सीमाहीन और 'अनन्त' कहा। आकाश के विस्तार का एक पर्यायवाची 'अनन्त' ही है। इसी तरह, यदि हम 'काल' के विस्तार को समझने की कोशिश करें तो भी शायद हमारी सारी कल्पना-शक्ति जवाब दे जाएगी। काल के समूचे विस्तार में हमारी सौ-पचास बरस की ज़िन्दगी के मायने क्या हैं? ऐसे में ज़रा ठीक से सोचिए कि इस अनन्त में हम ख़ुद को कहाँ खड़ा पाते हैं! अगर बेहद विनम्रता दिखाते हुए हम अपनी हैसियत को एक परमाणु के बराबर भी रखने की कोशिश करें तो भी वास्तव में ब्रह्माण्ड के समूचे विस्तार की दृष्टि से यह हमारा बड़बोलापन ही होगा। बहरहाल, हमारे लिए इस जगत्-नियन्ता ने यह नियामत बख़्शी है कि हम इस विराट् में बेहद 'लघु' होते हुए भी एक निश्चित हैसियत के मालिक ज़रूर हैं और हममें यह क़ाबिलियत भी भरी गई है कि हम अज्ञानता की तमाम बाधाओं को पार करते हुए इस 'अनन्त' का ज्ञान अपने भीतर समो सकते हैं और संसार को अपनी आभा से आलोकित कर सकते हैं।

सच कहूँ तो अहङ्कार को दूर भगाने के लिए मेरे जैसे व्यक्ति के लिए तो चाँद-तारों को निहारना ही काफ़ी है। मैं अपने अनुभवों के आधार पर एक अभ्यास बताता हूँ, शायद आपमें से भी किसी के कुछ काम आ जाए। आपने सुना होगा कि आयुर्वेद में अकसर कोई नुस्ख़ा देते हुए बताया जाता है कि इसे कम-से-कम 21 दिन तक सेवन किया जाए। यह 21 दिन का गणित दिलचस्प है। अब विज्ञान भी कह रहा है कि शरीर कोई भी नई आदत अपनाने में सामान्यतः तीन हफ़्ते का समय लेता है। मतलब यह कि किसी भी नई चीज़ को अपने जीवन में आप बार-बार दोहराते हैं तो 21 दिन बाद वह आपकी आदत में शामिल हो जाती है। दरअसल, आदतें चाहे ईमानदारी की हों या बेईमानी की, सभी हमारे व्यवहार का अङ्ग इसी तरह से बनती हैं। विज्ञान एक बात और कहता है कि हर ग्यारह महीने बाद हमारा शरीर एक नया शरीर हो जाता है। इतने दिनों में शरीर की हर पुरानी कोशिका मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और उसका स्थान नई कोशिका ले लेती है। इस तरह, हर ग्यारह महीने बाद हम वह नहीं होते जो ग्यारह महीने पहले थे। इसका अर्थ यह है कि कोई भी नई आदत डालने के लिए कम-से-कम इक्कीस दिन तक बार-बार उसे दोहराएँ। 21 दिन बाद आप देखेंगे कि जिन कामों को करने में आप आलसी थे या जो काम आपको कठिन लगते थे, उन्हें अब आप सहजता से करने लग गए हैं। नशे वग़ैरह की आदतें छोड़नी हों तो 21 दिन के नुस्ख़े के साथ ग्यारह महीने का फार्मूला भी आज़माना पड़ेगा। कम-से-कम 21 दिन तक नशे से दूर रहिए और मन में नशाविहीन ख़ुशहाल ज़िन्दगी के अनगिनत फ़ायदों की छवियाँ देखने का अभ्यास कीजिए। 21 दिनों में आप अपनी 'तलब' पर क़ाबू पा सकते हैं, पर

शरीर के भीतर से नशे के 'एडिक्शन' को पूरी तरह ख़त्म करने के लिए ग्यारह महीने तक नशे को हाथ भी मत लगाइए। ग्यारह महीने बाद आप चमत्कार देखेंगे कि आपके शरीर की कोशिकाएँ नशे की विरासत ढोना बन्द कर चुकी होंगी और आप पूरी तरह एक नए इनसान बन चुके होंगे।

ये बातें मैं कह रहा हूँ तो इसलिए कि मैं मानता हूँ कि हम सब, जो भले काम के प्रति जुनून रखने वाले लोग हैं, वे भी कोई बहुत अच्छे संस्कारों की विरासत लेकर नहीं आए हैं। हममें से ज़्यादातर लोग सामने दिख रहे ईर्ष्या-द्वेष, लाभ-हानि के संसार से ही निकले हैं। असल में समाज इतना बुरा है कि हमारे जैसे चरित्र के लोग बहुत भले दिखाई देते हैं, लेकिन यदि समाज अच्छा होता तो शायद हम भी बहुत गए-गुज़रे लोग ही दिखाई देते। हमारे भीतर जाने कितनी कमियाँ-कमज़ोरियाँ होंगी, जिन्हें दूर करने की जुगत हमें भी करनी ही पड़ेगी। बेहतरी इसी में है कि हम अपना आत्मविश्लेषण करें, अपनी कमज़ोरियों की शिनाख़्त करें और 21 दिन के फार्मूले पर चलकर उन्हें दूर करने का अभ्यास करें। ऐसा भी नहीं है कि इस तरह से अभ्यास करना बहुत मुश्किल भरा ही हो। उदाहरण के लिए आप देख सकते हैं कि सेना में जब लोग भर्ती होते हैं तो जाने कहाँ-कहाँ से आते हैं; अलग-अलग पृष्ठभूमि के होते हैं; सोने-जागने, उठने-बैठने तक की आदतें एक-दूसरे से भिन्न होती हैं, परन्तु दो-चार महीने साथ-साथ कवायद करने के बाद सब एक रङ्ग में रँग जाते हैं। याद रखिए, माँ के पेट से कोई ईमानदार और बेईमान नहीं पैदा होता, यह सब रोज़-रोज़ किए और कराए गए अभ्यासों का फल है।

इन अभ्यासों ने मुझे बहुत कुछ दिया है, आपको तो ये और भी ज़्यादा देंगे। मेरे जैसा व्यक्ति, जिसे डॉक्टरों के मुताबिक 12-13 साल पहले इस दुनिया को अलविदा कह देना चाहिए था, इन अभ्यासों के सहारे ही आज ज़िन्दा है। अँग्रेज़ी दवाओं के पार्श्वप्रभावों ने मेरा शरीर तो जैसे खोखला ही कर दिया था। फेफड़े, लिवर डैमेज की स्थिति में थे। छोटी उम्र में डायबिटीज का दंश भी झेल रहा था। आँखों की रोशनी ऐसी हो चुकी थी कि लगता था कुहासे के भीतर से देख रहा हूँ। वर्षों तक दो-तीन घण्टे से ज़्यादा मैं सो नहीं सकता था। अल्सर और एसिडिटी का यह हाल था कि जैसे पेट में आग जल रही हो।

बहरहाल, हौसला मैंने हमेशा बनाए रखा। ज़िन्दगी के छोटे-छोटे अभ्यासों से मैंने अपने भीतर का सङ्कल्प जगाया। आयुर्वेद, होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा, योग वग़ैरह का अध्ययन किया और इसके बाद अपने 'काम्बीनेशन' बनाकर ख़ुद अपना इलाज शुरू किया। आज की तारीख़ में शरीर भले थोड़ा कमज़ोर दिखता हो या कि कुछ तकलीफ़ें अभी भी दबी-छिपी पड़ी हों, पर मैंने डायबिटीज तक को तो मात दे ही दी है। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है? बग़ैर कोई दवा खाए अब रसगुल्ले मैं शौक़ से खा सकता हूँ। 10-12 घण्टे की पत्रकारिता की ड्यूटी रोज़ निभाता हूँ। इसके बाद घण्टे-आध घण्टे का जो भी वक़्त मिलता है, उसका इस्तेमाल करते हुए पिछले कुछ सालों में आधा दर्जन किताबें भी लिख चुका हूँ। व्याकरण जैसे गम्भीर विषय पर 'हिन्दी की वर्तनी' और 'अच्छी हिन्दी कैसे लिखें' जैसी पुस्तकों को तो जो इज़्ज़त मिली है, वह मेरी भी कल्पना के बाहर है। इन कामों के लिए मुझे सप्रे सङ्ग्रहालय (भोपाल) ने एक राष्ट्रीय सम्मान से नवाजा, सो अलग। एक-दो बार के मुलाक़ाती अकसर मुझे सीधा-सादा खाँटी गान्धीवादी समझ लेते हैं और सोचते हैं कि मुझे तकनीकी विकास वग़ैरह से क्या मतलब, पर सच्चाई यह है कि छोटी-छोटी कोशिशों के चलते मैं कम्प्यूटर के हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर दोनों पक्षों की कामचलाऊ ठीक-ठाक जानकारी रखने लगा हूँ। कई बार ऐसा भी हुआ है कि जिस हिन्दुस्तान टाइम्स के दफ़्तर में मेरा दिन बीतता है, वहाँ के

कम्प्यूटर इञ्जीनियरों की भी कुछेक समस्याओं का समाधान मेरे हाथों हुआ। और तो और, घड़ी-रेडियो जैसी चीज़ों की मरम्मत भी मैं कर सकता हूँ। छुट्टी के दिनों में समाजसेवा की अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुसार भी कई काम करता ही हूँ। मुफ़्त में लोगों का इलाज (होम्योपैथी, आयुर्वेद से) करता हूँ, ग़रीब बच्चों को पढ़ाने में मदद करता हूँ।

यह सब मैं इसलिए बता रहा हूँ ताकि आप महसूस कर सकें कि आप वास्तव में महान् क्षमताओं के मालिक हैं। मेरे जैसा घोर बीमार, सेहत और साधन दोनों में शून्य पर खड़ा व्यक्ति भी जब घिसट-घिसट कर इतने सारे काम कर सकता है तो आप लोग तो मुश्किलों का हर पहाड़ पार कर सकते हैं। आपसे निवेदन यही है कि आप अपनी छोटी-से-छोटी हरकत को भी हल्के में मत लीजिएगा। लोगों की निगाहें आपकी ओर हैं। वे आपको क़दम-क़दम पर तौलना चाहेंगी। कोई भी हल्कापन कहीं आपको इतनी दूर न उड़ा ले जाए कि वापसी की कोशिश तक जानलेवा बन जाए।

इन सबके बीच सबसे बड़ी चीज़ है, सच्चाई की राह पर चलते हुए हौसला बनाए रखना। किसी भी सामाजिक आन्दोलन या क्रान्ति की कामयाबी के शुरुआती दिनों में आमतौर पर यह हौसला क़ायम रहता है, पर जब कुछ वक़्त बाद ज़िन्दगी एक ख़ास ढर्रे की आदी हो जाती है और सामने कोई मिशन नहीं होता तो क्रान्तिकारियों के स्वभाव में भी प्रमाद के प्रवेश की सम्भावना बढ़ जाती है और एक-एक कर चीज़ें बिखरने लगती हैं। असल में इतिहास से सबक़ लेने की ज़रूरत ऐसे ही मौक़ों के लिए होती है। बहरहाल, विज्ञान और अध्यात्म दोनों ओर से शुभ सूचना यही है कि ईमानदारी का हौसला हमेशा बनाए रखा जा सकता है। और इस नाते, यह उम्मीद रखने में कोई बेमानी बात नहीं कि आप सबने जो नैतिक मानदण्ड गढ़े हैं अब आप उन्हें और आगे ले जाने की कोशिश ज़रूर करेंगे।

कुछ सुझाव

मन में सुझाव भरे जाने कितने ख़याल हैं, पर उनमें से कुछ को आपसे साझा कर रहा हूँ। शायद किसी में काम की कोई बात निकल आए।

(1)

जनलोकपाल में भ्रष्टाचार की जाँच और दण्ड देने की प्रक्रिया यक़ीनन क़ाबिलेतारीफ़ है, पर कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि इसका पूरा चेहरा एकतरफ़ा तरीक़े से कहीं कुछ क्रूर क़िस्म का तो नहीं है? क्या जनलोकपाल में कोई मानवीय पहलू नहीं जोड़ा जा सकता? मसलन, जाँच और दण्ड के अलावा जनलोकपाल की एक ऐसी भी शाखा बनाई जाए जो सरकारी कर्मचारियों के चरित्र निर्माण पर भी ध्यान केन्द्रित करे। लोगों को ईमानदार बनाने के लिए विभिन्न विभागों में समय-समय पर प्रेरक व्याख्यान, व्यावहारिक कार्यक्रम, शिविर वग़ैरह किए जाएँ। धर्मगुरुओं, वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों आदि की भी मदद ली जाए। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मुझे लगता है कि कई बार बेईमानी की आदत मानसिक बीमारी की तरह होती है और बार-बार के अभ्यास और उपाय से इसे दूर भी किया जा सकता है। अच्छी प्रेरणाएँ कई बार दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में भी सुधार ला सकती हैं।

असल बात यह कि बेईमान को दण्ड देना तो एक पक्ष है, पर हमारा असली लक्ष्य ईमानदार मनुष्य का निर्माण होना चाहिए, और इसके लिए अन्ततः हमें चरित्र निर्माण के पहलू पर काम करना ही पड़ेगा।

(2)

कई बार मुझे लगता है कि 'आप' के विधायकों को स्वयं के चरित्र निर्माण पर विशेष ज़ोर देना चाहिए, क्योंकि अब यह आन्दोलन इस मुक़ाम पर पहुँच चुका है कि यह देश ही नहीं, दुनिया के लोगों को भी महान् प्रेरणाएँ दे सकता है। वर्ष में एक-दो बार के लिए यह योजना बनाई जा सकती है कि कुछ प्रतिनिधियों को समूह में बाँटकर महात्मा गान्धी की आख़िरी साधनास्थली सेवाग्राम आश्रम जैसी किसी जगह पर एकाध हफ़्ते के लिए भेजा जाए, जहाँ वे कुछ चुनिन्दा गान्धी-साहित्य या प्रेरक साहित्य पढ़ें और आश्रम में झाड़ू लगाने से लेकर खेती वग़ैरह तक के कुछ सेवा के काम करें। यह कार्यक्रम बनाते हुए मीडिया के सामने भी स्पष्ट घोषणा की जाए, ताकि आमजन तक भी यह सन्देश पहुँचे। ऐसे ही विभिन्न धर्मों के निर्विवाद धर्मगुरुओं व आध्यात्मिक लोगों के सान्निध्य में रहकर कुछ सीखने की मंशा से भी एक-दो दिन के कार्यक्रम घोषित किए जा सकते हैं।

एक ज़बरदस्त प्रेरक काम यह हो सकता है कि हम घोषित करें कि हमारी सरकार में जो भी मन्त्री बनेंगे वे हर महीने या दो-तीन महीने के अन्तराल पर एक, दो या तीन दिनों के लिए वैसे ही मजदूरी का कोई काम करेंगे जैसे कि इस देश का आम मजदूर करता है। उन तीन दिनों के लिए अपने भोजन की व्यवस्था भी वे इस काम से मिले मेहनताने से ही करें। ऐसे काम नरेगा वग़ैरह की तरह से सरकार की ओर से भी दिए जा सकते हैं। यह करते हुए यह स्पष्ट घोषणा की जाए कि 'यह काम हम इसलिए कर रहे हैं ताकि सत्ता के नशे में हम अपनी ज़मीन से कट न जाएँ और लगातार यह अहसास करते रहें कि ज़मीन पर खड़ा आम आदमी कैसा जीवन जीता है।'

याद रखिए, यदि कोई साधारण व्यक्ति ऐसी मजदूरी करे तो यह उसकी मजबूरी समझी जाएगी, परन्तु यदि कोई समर्थ व्यक्ति या बड़ा नेता, मन्त्री ऐसा काम करे तो यह उसकी महानता समझी जाएगी और इसका फलितार्थ होगा कि देश के लोग भी त्याग-तपस्या का जीवन जीने को प्रेरित होंगे।

(3)

मेरा मानना है कि केजरीवाल जी को अपनी दिनचर्या कुछ ऐसे ढङ्ग से बनानी चाहिए, जिसके तहत वे समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिष्ठित लोगों से मुलाक़ात का विशेष कार्यक्रम रखें। मसलन, डॉक्टरों, इञ्जीनियरों, वकीलों, वैज्ञानिकों आदि से मुलाक़ात कर उनसे राय-मशवरा करें, ताकि इन लोगों को अपने महत्त्वपूर्ण होने का अहसास हो। अतिप्रतिष्ठित और निर्विवाद व्यक्तित्व वाले लोगों—ख़ासतौर से साहित्यकारों, कलाकारों, वैज्ञानिकों आदि, जिन्हें सृजनात्मकता के लिए जाना जाता है—को अपने पास न बुलाकर हमें ख़ुद उनके पास जाने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। ये आमतौर पर स्वाभिमानी जीव होते हैं। ज्ञान-विज्ञान में रत रहने वाला यह वर्ग पद-पैसे से ज़्यादा सम्मान की चाह रखता है। ज्ञानी का सम्मान राजा को भी करना चाहिए, यह इस देश की परम्परा रही है। इन्हें महत्त्व देकर हम इनके सम्मान, स्वाभिमान की रक्षा तो करेंगे ही, इनकी आलोचनात्मक धार को भी अपने प्रति सदाशयता में बदल सकेंगे।

(4)

'आप' अभी हाल सचमुच आम आदमी की पार्टी है, पर आगे इस पर ख़ास आदमी की पार्टी होने का ख़तरा मँडराता रहेगा। पूरी सम्भावना है कि 'आप' की कामयाबी को देख अब अन्य पार्टियों के नेता भी इसकी तरफ़ लालायित होंगे। यों, भले लोग कहीं से भी आएँ, उनका स्वागत किया जाना चाहिए, पर भले लोगों की शिनाख़्त कैसे

की जाए, असल प्रश्न यह है। बायोडाटा और बीती ज़िन्दगी का जुग़राफ़िया देखकर फ़ैसला लेना बुरा नहीं है, पर आने वाले की मंशा भला कैसे भाँपेंगे? ध्यान देने वाली बात यह है कि जो सामान्य जनता के बीच से आने वाले ताज़े चेहरे हैं वे आमतौर पर किसी ख़ास तरह से रूढ़ नहीं होंगे और उन्हें आसानी से संस्कारित किया जा सकता है, पर जो लोग राजनीतिक दलों में कई-कई वर्षों से काम कर रहे होते हैं उनकी एक ख़ास तरह की राजनीतिक पैंतरेबाज़ी की आदत पड़ जाती है। वे यहाँ आकर भी कुछ वक़्त बाद अपनी वही पैंतरेबाज़ी दिखाना शुरू कर सकते हैं। हमें शायद इसका कोई रास्ता तलाशना चाहिए। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जिस तरह से किसी नए पन्थ या धर्म में प्रवेश के समय व्यक्ति को किसी ख़ास तरह की साधना से गुज़ारा जाता है, वैसे ही हम भी ईमानदारी की राजनीति की कोई साधना पद्धति विकसित करें, जिसके संस्कारों की छाप लम्बे समय तक व्यक्ति के मानस पटल पर बनी रहे। यह दिलचस्प है कि प्राचीन भारत में भी ऐसी परम्परा थी कि यदि कोई व्यक्ति एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव में बसने के लिए जाता था तो उसे उस गाँव में अपनी विश्वसनीयता प्रमाणित करने के लिए कुछ ख़ास तरह की परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता था और कई बार की सभा-पञ्चायत के बाद ही वह स्वीकार्य बन पाता था।

(5)

यदि चार-छह दिनों बाद अरविन्द केजरीवाल जी मुख्यमन्त्री की कुर्सी पर बैठ जाते हैं तो ज़ाहिर तौर पर उनके इर्दगिर्द आम लोगों के बजाय अफ़सरों या ख़ास लोगों का जमावड़ा ज़्यादा रहेगा। तब उनके साथ काम कर चुके तमाम पुराने साथियों की सहज शिकायत हो सकती है कि अब 'अरविन्द केजरीवाल दुर्लभ जीव हो गए हैं।' ऐसी परिस्थितियों को ठीक तरह से सुलझाया न गया तो उनके कई नज़दीकी लोग ही प्रतिक्रिया में उनके विरोधी बन सकते हैं। हालाँकि सच्चाई की राह पर चलने वाले किसी व्यक्ति के लिए यह चिन्ता की बात नहीं होनी चाहिए, पर मेरा सुझाव है कि अरविन्द जी को महीने-दो महीने में एकाध बार अपने पुराने साथियों के साथ बैठना चाहिए और उनसे सलाह-मशवरा करते रहना चाहिए।

(6)

मुझे लगता है कि समय-समय पर हमें आम जनता, मीडिया और अन्य पार्टियों से अपील करनी चाहिए कि वे तिमाही, छमाही या सालाना स्तर पर सरकार की कमियाँ बताते रहें; ताकि पार्टी जनोन्मुख बनी रहे और उसकी विनम्रता सिद्ध होती रहे।

(7)

मैं सोचता हूँ कि सरकार लम्बी चले तो लम्बे समय की योजनाओं के तौर पर क्या किया जाना चाहिए। पानी, बिजली, सड़क, अस्पताल, परिवहन वग़ैरह तत्काल हल किए जाने वाले सवाल हैं, पर हमारी कोई दूरगामी दृष्टि भी होनी चाहिए। मुझे लगता है कि शिक्षा और विज्ञान दो महत्त्वपूर्ण काम हो सकते हैं। शिक्षा या कहें कि संस्कार व्यवस्था ऐसी चीज़ है, जिससे हमारी अच्छी या बुरी पीढ़ियाँ निर्मित होती हैं। किसी ज़माने में राजा और रङ्क दोनों की सन्तानें एक ही तरह की विद्यालयी पद्धति (गुरुकुल) में अध्ययन करती थीं और अध्ययनकाल में एक ही तरह के कपड़े (कोपीन) पहनती थीं। राजा के लड़के को भी गुरुकुल में रहते हुए अपना अहङ्कार समाप्त करने के लिए भिक्षाटन (आज की भिखमङ्गई नहीं) करने जाना पड़ता था। शायद ऐसी ही वजहों से यह देश 'सोने की चिड़िया' और

'विश्वगुरु' जैसी उपाधियाँ हासिल कर सका और संसार में सबसे समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का स्वामी बना। दुर्भाग्य से आज अमीर की शिक्षा अलग और ग़रीब की शिक्षा अलग हो गई है। इस खाई को पाटा जाना चाहिए। इसके लिए पाठ्यक्रमों का रूप ऐसा बनाना चाहिए कि विद्यार्थी स्वावलम्बन के साथ-साथ नैतिकता के संस्कार लेकर भी विद्यालय से बाहर निकलें।

इसी तरह से विज्ञान और तकनीक का मुद्दा भी बहुत बड़ा है। यह ऐसा दौर है, जहाँ ताक़त उसी की मुट्ठी में रहने वाली है जिसके पास तकनीकी समृद्धि होगी। अमरीका की धमक अगर हर तरफ़ सुनाई देती है, तो इसीलिए कि तकनीक में वह आगे है। विज्ञान और तकनीक पर ठीक दिशा में काम हो तो इस दुनिया को स्वर्ग बनाना मुश्किल नहीं है। अकसर प्रकृतिवादी और समाजकर्मी क़िस्म के लोग विज्ञान और तकनीकी विकास का विरोध करते देखे जाते हैं, लेकिन याद रखना चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड का कण-कण विज्ञानमय है। सब कुछ विज्ञान ही है। सृजन का विज्ञान या विध्वंस का विज्ञान। रास्ता हमें चुनना है कि हम किस पर चलते हैं। मुझे लगता है कि ऊर्जा क्षेत्र में ही ठीक से काम कर लिया जाय तो हर घर, हर गाँव का अपना निजी पॉवर हाउस हो सकता है और बिजली के लिए बाहरी निर्भरता की ज़रूरत ख़त्म हो सकती है। हवा, पानी से लेकर सूरज की रोशनी तक, सैकड़ों तरीक़ों से सस्ती और आसानी से बिजली बनाने की तकनीक पर काम हो सकता है। आख़िर क्यों न दिल्ली को जनोपयोगी तकनीक देने वाले एक बड़े केन्द्र के रूप में विकसित करने की दिशा में सोचा जाए?

(8)

अभी तक हमने जनता में तो प्रेम के गुलदस्ते बाँटे हैं, पर दूसरी पार्टियों की ओर नफ़रत के डण्डे ख़ूब उछाले हैं। मन में हमारे भले ही डण्डे उछालना न रहा हो, पर दिखा यही है। क्या अब पूरी-की-पूरी राजनीति को ही हम प्रेममय नहीं बना सकते। मैं समझता हूँ कि प्रेम की राजनीति सम्भव है। महात्मा गान्धी को थोड़ा नज़दीक से समझने की कोशिश करें तो कई रास्ते निकल आएँगे। याद रखिए, नफ़रत की प्रतिक्रिया तो नफ़रत हो सकती है, पर प्रेम की प्रतिक्रिया कभी नफ़रत नहीं हो सकती, उससे तो अन्ततः प्रेम ही पैदा होगा। थोड़े-से अपनापे, थोड़े-से प्रेम, थोड़ी-सी विनम्रता की ताक़त से ही हमने जनता के मन में उम्मीदों का सैलाब ला दिया, कल्पना कीजिए कि प्रेम की पूरी ताक़त दिखे तो क्या होगा। मैं समझता हूँ कि विरोधियों को भी अन्ततः प्रेम की ताक़त से ही झुकाया जा सकता है।

बीते साठ साल से इस देश में नफ़रत की, निन्दा की राजनीति चल रही है। आप प्रेम की राजनीति शुरू कर सकते हैं। ज़रूरी नहीं कि हमेशा दूसरी पार्टियों की बुराई की बुनियाद पर ही अपनी राजनीति का महल खड़ा किया जाए। बुराई दिखे तो उसकी निन्दा ज़रूर की जानी चाहिए, पर प्रशंसा का कोई मौक़ा भी नहीं चूकना चाहिए, क्योंकि सच्चाई यही है कि बुरे-से-बुरे व्यक्ति में भी भलाई का कोई-न-कोई कोना ज़रूर छिपा होता है। सनद रहे, निन्दा और आलोचना के तीखे तीर किसी का सिर तो नीचा कर सकते हैं, पर किसी का दिल जीतने के लिए प्रेम का हथियार ही काम आ सकता है।

(9)

जो लोग पार्टी में नेतृत्व की कतार में हैं या ख़ुद को नेता के रूप में उभरते देखना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे ख़ुद को नई-नई चीज़ें भी सीखने को तैयार रखें। अच्छी मंशा, अच्छा चरित्र तो बुनियादी चीज़ें हैं, पर नई योजनाएँ, नए

फ़ैसलों के लिए नई-नई चीज़ों की समझदारी भी चाहिए। ज़रूरत पड़े तो आप जनता को बाँध सकने वाला भाषण दे सकें, आम लोगों में घुल-मिलकर रह सकें, ख़ुद ही मञ्च सजा सकें, दरी-चादर उठा सकें या कि देश-दुनिया के अन्यान्य विषयों पर बात कर सकें। आप तमाम विषयों में विद्वान् बनने की भले ज़हमत न उठाएँ, पर ज़रूरी चीज़ों की बुनियादी समझ बनाने की सहज कोशिश तो करें ही। ऐसा नहीं करेंगे तो राहुल गान्धी की तरह 'पप्पू' बनकर रह जाएँगे और महानता की तमाम पुश्तैनी विरासत भी दग़ा दे जाएगी। तमाम विषयों की छोटी-छोटी जानकारियाँ ही हैं जो बीस बरस पहले ज़मीन-जायदाद छोड़ फ़क़ीरी की राह पर चल चुके मेरे जैसे व्यक्ति को आज भी ज़िन्दा रखे हुए हैं। यहाँ एक बात ज़रूर स्पष्ट करता चलूँ कि राहुल गान्धी का पप्पूपना दरअसल उनके तौर-तरीक़े के चलते मौजूदा लोकमानस का एक भाव है; अन्यथा उनमें मुझे उम्मीद की कुछ किरणों भी दिखाई देती हैं। राहुल गान्धी में एक ईमानदार भोलापन है, जो शातिर राजनीति के बरअक्स सम्भावनाएँ जगाता है। दुर्भाग्य से वे अपने दादा-नानी के बेमतलब के रूढ़ से दायरे में क़ैद हैं और विरासत के बोझ तले दबे नज़र आते हैं। इस दायरे से बाहर झाँकने की वे थोड़ी भी हिम्मत दिखाएँ तो मुझे लगता है कि काँग्रेस में कई सकारात्मक परिवर्तन कर पाएँगे।

बहरहाल, याद रखिए, चरित्र का जुग़राफ़िया बड़ी-बड़ी क्रान्तिकारी बातों से नहीं, बल्कि बहुत छोटी-छोटी चीज़ों से तैयार होता है। बड़ी-बड़ी क्रान्तिकारी बातों से चरित्र निर्माण होता तो जेपी आन्दोलन के बाद लालू और मुलायम जैसों की जमात न पैदा होती। चरित्र-निर्माण के इस रहस्य को गान्धीजी बेहतर ढङ्ग से महसूस कर पाए थे। खाने-पीने, सोने-जागने, उठने-बैठने जैसी छोटी-छोटी आदतों पर वे ख़ासा ध्यान देते थे। यही वजह थी कि जब अर्थशास्त्र के महान् विद्वान् कुमारप्पा आज़ादी की लड़ाई में किसी बड़ी ज़िम्मेदारी की उम्मीद में गान्धीजी के पास पहुँचे तो गान्धीजी ने उन्हें पहला काम चावल से कङ्कड़ बीनने का दिया।

अपने चरित्र, अपनी आदतों को आपको आदर्श की ओर ले जाना होगा। सामान्य लोग बड़े लोगों के चरित्र की ही नक़ल करने की कोशिश करते हैं। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के अनुसार। नेता चरित्रहीन और भ्रष्ट होगा तो यह बीमारी धीरे-धीरे जनता में भी पहुँचेगी ही। नेता चरित्रवान हो तो लालबहादुर शास्त्री की तरह की अपील का असर हो सकता है और जनता देश के लिए एक जून का उपवास भी रख सकती है। आज जो हम हर तरफ़ समस्याओं का पहाड़ देखते हैं, वह सब नीचे की जनता नहीं, ऊपर के नेताओं, सत्ताधीशों की देन है। अच्छी सूचना यह है कि आत्मा का, मन का विज्ञान समझते हुए कुछ आसान से अभ्यास शुरू कर दीजिए, आपके चरित्र की तमाम कमियाँ दूर हो जाएँगी।

(10)

दूसरी पार्टियों के आरोपों का अकसर हमें जवाब देना पड़ता है। कई बार अपनी ज़मीन खिसकते देख वे इतने फूहड़ बयान देते हैं कि ताज्जुब होता है। चैनलों पर चलने वाली बहसों में नेताओं के अहङ्कार भरे विरोधाभासी बयानों की क्लिपिङ्ग हमें जुटाते रहना चाहिए। कई अवसर ऐसे हो सकते हैं जबकि हम इन बयानों की क्लिपिङ्ग से डाक्यूमेण्ट्री वग़ैरह बनाकर बिना अपनी ओर से विवादास्पद टिप्पणी किए भी जनता को नेताओं की असलियत बता सकते हैं। यह ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकता है, जिससे कोई नेता या दल मुकर नहीं सकता। यह 'उन्हीं की जूती उन्हीं का सिर' वाला असर करेगा।

(11)

एक अजीब-सी उलटबाँसी मैं महसूस कर रहा हूँ। केजरीवाल जी के व्यवहार में विनम्रता बढ़ती हुई लग रही है, तो कई दूसरे साथियों के व्यवहार में विनम्रता का तत्त्व घटता-सा लग रहा है। याद रखिए, देश-समाज के नाम पर घोर व्यस्तता का तर्क देकर आत्मविश्लेषण और आत्म-साधना की जगह को अपनी दिनचर्या में से कम करते जाएँगे तो एक वक़्त ऐसा आ सकता है कि न आप अपने रह पाएँगे और न देश-समाज के। होना तो यह चाहिए कि जैसे-जैसे आप महत्त्वपूर्ण बनते जाएँ, आपकी शोहरत बढ़ती जाए, वैसे-वैसे आप विनम्र बने रहने का अभ्यास भी बढ़ाते जाएँ। बेहतर दुनिया कुछ इसी तरीक़े से बन सकती है।

(12)

आप विश्वसनीयता के जिस शीर्ष पर जा पहुँचे हैं वहाँ से 'हिन्दुत्व' जैसी अवधारणाओं की इतनी बढ़िया व्याख्या दे सकते हैं कि साम्प्रदायिकता की पूरी ज़मीन खिसक जाए। अगर आप यह रहस्य समझ पाएँ कि आपके 'भारत माता की जय' और 'वन्दे मातरम्' के नारे को हर वर्ग ने बड़ी सहजता से क्यों स्वीकार कर लिया, तो आप अपनी सम्भावना भी समझ जाएँगे। यों इस विषय को अभी हाल यहीं छोड़िए, क्योंकि यह लम्बी चर्चा की माँग करता है।

(13)

आजकल 'आप' पर तमाम नेताओं की निगाहें लगी हुई हैं। 'आप' को अपनी तरफ़ खींचने के मक़सद से तीसरे मोर्चे की क़वायद फिर ज़ोर-शोर से शुरू हो सकती है; पर मुझे लगता है कि ऐसी किसी गतिविधि में शामिल होना 'आप' के लिए आत्महत्या जैसी स्थिति ही होगी। वजह यही है कि 'आप' पार्टी एक नई राजनीतिक संस्कृति की उम्मीदें जगाकर आगे बढ़ रही है, जबकि तीसरे मोर्चे की पार्टियाँ समझौतापरस्त और मौक़ापरस्त राजनीति ही करती आई हैं।

(14)

मुझे लगता है कि भ्रष्ट लोगों को गालियाँ देने के बजाय उनसे सदाचार की राह पर चलने का आह्वान करना चाहिए। भ्रष्टाचार से ज़रूर नफ़रत कीजिए, पर भ्रष्टों को प्रेम से सुधारने की कोशिश करेंगे तो बात शायद ज़्यादा आसानी से बनेगी। इसे एक उदाहरण से समझें। भ्रष्ट से भ्रष्ट दारोगा भी घर पहुँच कर माँ-बहन और पत्नी-बच्चों पर प्रेम लुटाता ही है। इसका मतलब यह कि प्रेम का तत्त्व उसमें भी भरपूर है। ऐसे में, यदि उसे भी कहीं से प्रेम मिलेगा तो उम्मीद की जानी चाहिए कि प्रतिक्रियास्वरूप वह भी कोई नफ़रत की सौग़ात तो नहीं ही देगा। इसी तरह, यदि भ्रष्टाचार में डूब रहा कुछ धन बचने लगे तो इसका श्रेय खुले दिल से भ्रष्टाचार से ख़ुद को दूर करने वालों को देते हुए बताएँ कि—''आपके सदाचार की राह पर चलने से इतने करोड़ या इतने अरब धन की बचत हुई। और...इसके लिए आपका धन्यवाद कि इस धन से हम अमुक-अमुक काम कर पाएँगे और इससे इतने लाख या इतने करोड़ लोगों का भला होगा। वास्तव में सदाचार का मार्ग अपना कर आपने समाज को प्रेरणा देने का महान् पुण्य किया है।'' मैं समझता हूँ कि इस तरह के तरीक़े से भ्रष्टों को सुधरने में गर्व का अहसास होगा और वे मुँह छिपाने पर मजबूर करने वाली हरकतों

से दूर रहने की कोशिश करेंगे। सौ प्रतिशत की उम्मीद हम भले न करें, पर जो भी थोड़ा-बहुत परिणाम निकलेगा, अच्छा ही होगा।

(15)

अभी तक यह होता रहा है कि विरोध की आग बेक़ाबू हो जाने पर ही सरकारों के कानों पर जूँ रेंगती है। 'आप' की ओर से इस दिशा में क्यों न सोचा जाए कि कहीं से किसी मुद्दे पर विरोध की आवाज़ उठते ही उसे ज़िम्मेदारी के साथ सुन लिए जाने की व्यवस्था की जाए।

(16)

एक आख़िरी विश्लेषण। क्या आपको लगता है कि 'आप' को महज़ 28 सीटें मिली हैं। जी नहीं, 'आप'को सीटों के रूप में अपनी स्थिति भले ही न दिख पा रही हो, पर मिला पूर्ण बहुमत है। योगेन्द्र यादव की 47 और 55 सीटों की सर्वे रिपोर्ट दुरुस्त थी। मतदान के दो हफ़्ते पहले तक यही स्थिति थी। 'आप' के पक्ष में समर्थन की एक अन्तर्धारा तेज़ी से आगे बढ़ रही थी, पर पार्टियों द्वारा स्टिङ्ग करवाने, अन्ना से ऐन वक़्त पर उलटे बयान दिलवाने की घटनाओं ने 'आप' के पक्ष में बनते माहौल को संशय में बदला और लोग भ्रम के शिकार हुए। असल में दोनों पार्टियों को समझ में आ गया था कि किसी नैतिक मुद्दे पर केजरीवाल जी को चुनौती नहीं दी जा सकती। ऐसे में काँग्रेस और भाजपा दोनों की योजना बनी कि क्यों न ऐसा भ्रम फैलाया जाए जिससे लगे कि केजरीवाल भी कोई दूध के धुले नहीं हैं और 'आप' का चरित्र भी बाक़ी पार्टियों जैसा ही भ्रष्ट है। ज़ाहिर तौर पर 'आप' का अपना कोई वोटबैङ्क नहीं था। उसे तो महज़ अपने विश्वसनीय नैतिक सन्देशों के बूते वोट मिलने थे। उसके नैतिक सन्देश कमज़ोर पड़े तो आख़िरी वक़्त में सीटों की सङ्ख्या भी कम होनी ही थी। चुनाव के दो-चार दिन पहले 'आप' की तरफ़ से कोई तगड़ा नैतिक सन्देश आ पाया होता तो भी स्थिति कुछ और बेहतर हो जाती।

ख़ैर, ख़त लम्बा हो गया। भूल-चूक लेनी-देनी। मेरी किसी बात से किसी के दिल को कोई दुख पहुँचा हो तो क्षमा याचना! आख़िरी इच्छा बस यही कि काश! हम कोई ऐसा समाज बना पाएँ कि आधी रात को भी कोई स्त्री घर से बाहर निकले तो कम-से-कम मनुष्य नाम के प्राणी से उसे डर न लगे।

आपका शुभचिन्तक !

सन्त समीर

सी-319/एफ-2, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन-2,

साहिबाबाद, ग़ाज़ियाबाद-201005

दूरभाष : 8010802052--8010402052

ईमेल : santsameer@gmail.com

पत्र लेखक का संक्षिप्त परिचय

समाजकर्मी, लेखक व पत्रकार। स्वतन्त्र भारत में पहली बार बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते हुए अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में एक बार फिर से स्वदेशी-स्वावलम्बन का आन्दोलन शुरू करने वाली पहली टीम के प्रमुख सदस्य। बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद के ख़िलाफ़ बहस की शुरुआत करने वाली पत्रिका 'नई आज़ादी उद्घोष' व फ़ीचर सर्विस 'स्वदेशी संवाद सेवा' के पूर्व सम्पादक। पिछले कुछ वर्षों में 'जनमोर्चा', 'क्रॉनिकल समूह', 'ईएमएस'(न्यूज एजेंसी) आदि से जुड़कर भी पत्रकारिता की। कुछ लेखों की अनुगूँज संसद और विधानसभाओं तक भी पहुँची। पिछले दिनों चर्चा में रहीं 'हिन्दी की वर्तनी', 'अच्छी हिन्दी कैसे लिखें' तथा 'स्वदेशी चिकित्सा' जैसी पुस्तकों के लेखक। वर्तमान में हिन्दुस्तान टाइम्स समूह से सम्बद्ध। इसके अलावा विभिन्न सामाजिक कामों में सक्रिय भागीदारी।